उषा प्रियंवदा का कथा साहित्य और स्त्री

डॉ. पूनम सूद

एसोसिएट प्रोफेसर, श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी साहित्य की समकालीन कथा परंपरा में उषा प्रियवंदा एक ऐसी लेखिका के रूप में उभरी हैं जिन्होंने स्त्री जीवन की जटिलताओं, मानसिक उलझनों, सामाजिक द्वंद्वों और सांस्कृतिक दबावों को अत्यंत सहज, स्वाभाविक और यथार्थपरक शैली में प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में स्त्री केवल सहनशील पात्र नहीं, बल्कि प्रश्नवाचक, जिज्ञासु और आत्मचेतस व्यक्तित्व के रूप में उभरती है। प्रियंवदा का जन्म कानपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ, और उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. और पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। फुलब्राइट स्कॉलरशिप के माध्यम से वे अमेरिका गईं, जहाँ उन्होंने विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय, मैडिसन में दक्षिण एशियाई अध्ययन विभाग में प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। यह प्रवास उनके लेखन का आधार बना, और उनकी रचनाओं में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों के बीच टकराव और सामंजस्य की थीम प्रमुखता से उभरती है। उनका रचना बहुत विस्तृत है जिसमें ज़िंदगी और गुलाब के फूल(1961), कितना बड़ा झूठ (1966), एक कोई दूसरा (1966), फिर बसंत आया (1961), शून्य और अन्य रचनाएं (1996) कहानी संग्रह तथा पचपन खंभे लाल दीवारें (1962), रुकोगी नहीं राधिका (1968), शेषयात्रा (1984), अन्तर्वशी (2000), भया कबीर उदास (2005) औपन्यासिक रचनाएं शामिल हैं।

अपने कथा सृजन के बारे में वे स्वयं लिखती हैं-**" मेरे चारों ओर की घटनाएं, लोग, उनके जीवन की उलझने, और समस्याएं हर समय मेरी सृजनता को प्रभावित करती रहती हैं, उन सबके मिश्रण से पात्र एक आकार लेकर मानस को ऐसे जकड़ लेते हैं कि उन्हें नाम, मानव प्रवृत्तियाँ देकर, विभिन्न घटनाओं को पिरोकर एक कथा अपने आप बन जाती है, बस उसे लिखने का काम मेरा होता है।"** 1

उषा प्रियवंदा का कथा साहित्य स्त्री चेतना का साहित्य है। एक ओर जहां उनके नारी पात्र घुटन, संत्रास और अकेलेपन से जूझ रहे हैं वहीं दूसरी ओर अपनी स्वतंत्र अस्मिता को स्थापित करते हुए नजर आते हैं। उषा प्रियवंदा ने आधुनिक स्त्री की मन: स्थिति का यथार्थपूर्ण अंकन करते हुए उनके सामने आने वाली अनेक सामाजिक और आर्थिक जटिलताओं से कैसे निपटना है इसका भी समाधान प्रस्तुत किया है। उषा जी के लेखन की विषय में मधुप लिखते हैं की–

"उषा ने कृतिकार की ईमानदारी के साथ जीवनानुभव की प्रामाणिकता को कथा में उतारते हुए वर्जित सत्यों को भी साहस लेकिन सहजता के साथ प्रस्तुत किया है।"2

उनके पात्र स्त्री जीवन की विविध परतों को उघाड़ते नजर आते हैं। 'वापसी', विकल्प, रुकोगी नहीं राधिका, संकट, जैसी रचनाओं में स्त्रियां अपने जीवन का विकल्प स्वयं चुनती हैं, सामाजिक ढांचों के भीतर और बाहर से टकराती हैं। प्रो. रामजी। तिवारी लिखते हैं कि–

"उषा प्रियंवदा की नायिकाएं जीवन से पलायन नहीं करतीं, वे जीवन से संवाद करती हैं, वे पीड़िता नहीं हैं, वे चेतना की वाहक हैं।"3

उषा प्रियवंदा स्त्री पात्र अपने जीवन का मूल्यांकन करती हैं। वे अपने निर्णयों और इच्छाओं को पुनर्परिभाषित करने का साहस रखती हैं। यही उन्हें सामान्य स्त्री पात्रों से अलग रखता है। उदाहरण के लिए रुकोगी नहीं राधिका उपन्यास की नायिका राधिका अपने अस्तित्व तथा स्वातंत्र्य की खोज में भटकती अकेलेपन को अपनाती है। राधिका महानगरीय सभ्यता से जुड़ी हुई है। वह उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। कथा नायिका राधिका एक अत्यंत आधुनिक एवं बौद्धिक नारी है वह विद्रोहिणी है वह आत्म निर्भर के साथ बोल्ड भी है। राधिका अपने ऊपर थोपे गए किसी भी प्रकार के निर्णय को अस्वीकार करती है और एक आधुनिक शिक्षित स्त्री के रूप में सदियों से चली आ रही उन तमाम मान्यताओं को तोड़ते हुए जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण अपनाती है। पिता के आदेश को भी अस्वीकार करते हुए डैन नामक विदेशी पत्रकार के साथ एक वक्त रहते हुए भी वह उसके साथ किसी भी प्रकार के वैवाहिक बंधन में नहीं बंधती और न ही पिता के द्वारा बनाए गए संबंधों में बंधना चाहती है, प्रत्येक बंधन को नकारते हुए वह स्वच्छंद जीवन जीना चाहती है। वस्तुत: सदियों से पराधीन स्त्री उन तमाम बेड़ियों को उषा जी तोड़ते हुए एक उन्मुक्त स्त्री, एक स्वच्छंद स्त्री की छवि को गढ़ती हैं। राधिका परम्पराओं और सामाजिक उपेक्षाओं को चुनौती देती है और अपने जीवन को अपनी शर्तों पर जीने का निर्णय लेती है वह कहती है–

"मैं रुकने वालों में नहीं हूँ, मेरा रास्ता मुझे खुद तय करना है, चाहे वह अकेलापन ही क्यों न हो।"4

रुकोगी नहीं राधिका की रचना प्रकिया के पीछे जो संवेदना प्रखर होती है वह राधिका के अपने व्यक्तिव की, अस्मिता की, आत्मविद्रोह की, किसी अनचाहे बदले की और अपनी रति संबंधी आजादी की संवेदनात्मक स्थितियों से जुड़कर रुपायित होती है। पिता से संघर्ष करने के उद्देश्य से निकल पड़ने वाली राधिका अपने चारों तरफ की सीमाबद्धता को तोड़ती हुई आजादी की सीमाओं की तलाश करने की संवेदनाओं से

जुड़ती है। इस संवेदना का आधार एक ओर व्यक्ति के विद्रोह से है तो दूसरी ओर दैहिक इच्छाओं की पूर्ति से संबंधित स्थितियों में नई बोधवत्ता को खोजने में है

उषा प्रियंवदा ने अपने रचना संसार में मुख्य रूप से मध्यवर्गीय स्त्रियों की समस्याओं को उठाया है। वे स्वयं लिखती हैं कि – **"मेरी रचनाएं और अनुभूति मध्यम वर्ग नारी जीवन केंद्रित रही है और मेरी कहानियां उसी के चित्रण तक सीमित हैं। मैंने उनकी अनेक समस्याओं, उसकी मौन, व्यथा, विवशता, निराशा, और फ्रस्ट्रेशन को वाणी देने का प्रयास किया है। मेरे कथा साहित्य में नारीवादी दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से उभरता है।"5**

उषा जी ने नारी जीवन के बाहरी परिवेश और संघर्षों को ही नहीं दर्शाया, बल्कि उनकी आंतरिक उथल-पुथल को भी प्रभावी ढंग से उजागर किया है। आधुनिक युग, जो भौतिकवाद से परिपूर्ण है, में मानवता जितनी प्रगति कर रही है, उतना ही नैतिकता का पतन हो रहा है। ऊब, छटपटाहट, घृणा, अनास्था और वैमनस्य की भावनाएँ मनुष्य के हृदय में गहरे पैठ रही हैं, जिससे पूरा वातावरण अनैतिक हो गया है। इस कृत्रिम माहौल से नारी भी खुद को मुक्त नहीं कर पाई है, और इसका प्रभाव परिवार, समाज और संस्कृति पर स्पष्ट दिखाई देता है। उषा जी की रचनाओं का मुख्य विषय नारी चेतना के साथ-साथ मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण है। वे नारी जीवन के कटु यथार्थ को अपने उपन्यासों में सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करने में सफल रही हैं। उनके उपन्यासों में नारी जीवन की कठोर सच्चाइयाँ—निराशा, घुटन और ऊब के रूप में सामने आती हैं, फिर भी उनकी नारी पात्र इन विषम परिस्थितियों में हार नहीं मानतीं। वे इसका विरोध कर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को स्थापित करती हैं और नारी समाज को जागृत करती हैं। उपन्यास पचपन खंभे लाल दीवारें की नायिका सुषमा आर्थिक तंगी का दंश झेलते हुए भी दृढ़ रहती है। अपने सेवानिवृत्त पिता के घर में जीविका का कोई अन्य साधन न होने के बावजूद, वह परिवार की जिम्मेदारियों को निभाती है। इसके लिए उसे अपने प्रेम, अपनी खुशियों और इच्छाओं का दमन करना पड़ता है, जैसा कि उसके मार्मिक शब्दों में व्यक्त होता है: **"यह कॉलेज, ये खंभे, मेरी नियति हैं—मुझे यहीं छोड़ दो।"6**

उषा प्रियवंदा की रचनाओं में विवाह संस्था की गहराई से पड़ताल की गई है उनकी नायिकाएं विवाह को केवल सामाजिक दायित्व न मानकर आत्मिक सहभागिता की दृष्टि से देखती रही हैं किंतु लेखिका ने यह भी साबित किया विवाह संस्था ही स्त्री के दमन का कारण है, जहाँ प्रेम, सामंजस्य और सम्मान की अपेक्षा स्त्री की भूमिका एक सेविका की होकर रह जाती है। उषा प्रियवंदा की कहानियों की महिलाएँ विवाह के बाद भी अकेली, उपेक्षित और असंतुष्ट रहती हैं।

शेषयात्रा उपन्यास उनका तीसरा उपन्यास है इस उपन्यास में नायिका अनु के द्वारा ही उषा जी वैवाहिक संस्था की परते उखाड़ती हैं कि कैसे अनु को उसके पति ने त्याग दिया फिर भी अनु मजबूती से समाज से लड़ती है। नायिका विवाह के बाद पति की उपेक्षा और बेरुखी से आहत होकर एक भावनात्मक शून्यता में जीती है। अनु के ही मार्मिक शब्दों में–

"शादी के बाद जैसे कुछ खत्म हो गया था — प्रेम, स्पर्श, संवाद। अब तो बस एक भूमिका थी — पत्नी की, बिना जीवन के रस के।"7

किंतु वह कमजोर नहीं हुई वापस से अपने जीवन को संभालते हुए पुनः अपने अस्तित्व को स्थापित करती है। अनु कहती है –

"उस दिन के बाद मैं एक बार भी नहीं रोई। मालूम नहीं मेरे अंदर इतना तेज, इतना करेज कहां से आया। मुझे लगा मैं कुछ भी बन सकती हूँ।"8

शेषयात्रा उपन्यास के विषय में डॉ. निर्मला जैन लिखती हैं कि–

"इस उपन्यास का प्रमुख कथ्य है–स्त्री के सशक्तिकरण और आत्मविश्वास के अर्जन की कथा। इस प्रस्थान बिंदु के साथ अमेरिकन वस्तुस्थितियों का प्रवासी भारतीयों द्वारा सहज स्वीकार, स्त्री चरित्रों के विविध रूप, स्त्री–पुरुष संबंधों के विदेशी मॉडल की स्वीकृति, कुल मिलाकर उस दूर देश में प्रवासी भारतीयों की आचार–पद्धति का खाका खींचता है यह उपन्यास।"9

उषा प्रियंवदा की कहानियों और उपन्यासों में स्त्री का प्रेमिका के रूप में चित्रण अधिकांशतः देखा जा सकता है परंतु इसमें अधिकतर असफल प्रेमिकाओं का चित्रण मिलता है जिससे कभी कभी उनको अविवाहित या अकेले जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ता है। आजादी के बाद हर क्षेत्र में बदलाव आया, जिसमें स्त्री-पुरुष के जीवन स्वरूप में भी परिवर्तन दिखाई देने लगा, स्त्री के आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने से उनके प्रेमगत स्वरूप में भी अंतर दिखाई देने लगा। उषा प्रियंवदा ने उन प्रेमिकाओं का चित्रण किया है जो अल प्रेमी होने के बावजूद भी किसी दूसरे से प्रेम करती हैं। डॉ. गणेशदास के इस बात को बताते हुए लिखते हैं कि – **"एक से प्रतिबद्ध रहकर प्रेम करना और उसी से जुड़कर रहने वाली धारणा भी बदली है।"**10

'मछलियाँ' कहानी की विजी प्रेम में धोखा खाई एक असफल प्रेमिका है। वह मनीष को दिलो जान से चाहती है पर मनीष उसके साथ रहने के बजाय दूसरी स्त्री मुकी को चाहता है और जिस कारण विजी को छोड़ देता है। विजी प्रेम में घायल रोती हुई कहती है –**"मनीष कहा करता था**

कि प्यार चुक जाता है, भावनाएं मर जाती हैं, अकसर सोचती हूँ मुझमें ऐसा क्यों नहीं होता। मैं क्यों निर्मम, कठोर नहीं हो पाती! मुकी मुझ पर हँसती थी- मेरे भारतीय संस्कारों पर, मुझे इस पर लज्जा नहीं है कि मई उसकी तरह आधुनिक नहीं हूँ।"11

उषा प्रियवंदा ने स्त्री जीवन के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक जीवन की विभिन्न गतिविधियों का जीवंत चित्रण अपने साहित्य में किया है। उषा प्रियवंदा ने नारी जीवन की विसंगतियों, नई परिस्थितियों तथा उलझनपूर्ण मन: स्थितियों में नारी के मिसफिट होने की प्रवृत्ति को अपने उपन्यास और कहानियों में चित्रित किया है। आज स्त्री की बदलती हुई मान्यताओं, विश्वासों और परिस्थितियों के बदलाव को लेखिका ने अपनी कलम का आधार बनाया है, आज का व्यक्ति नई परिस्थिति में स्वयं से टूटते हुए, जिंदगी से जूझते हुए आर्थिक संकट से संघर्ष कर रहा है। स्त्री अस्मिता को लेकर बाहरी और भीतरी मोर्चे का अंतसंघर्ष लंबे अरसे तक चला और इसे सामाजिक–साहित्यिक विमर्श का स्वाभाविक हिस्सा उषा जी ने बनाया है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उषा के नारी पात्र अपने स्वत्व को पाने के लिए संघर्ष करते हुए आगे बढ़ती हैं और अंततः अपने अस्तित्व को पाने में वह सफलता प्राप्त करती हैं। उषा जी की लेखन यात्रा जैसे–जैसे आगे बढ़ती गई वैसे ही उनके नारी पात्र भी विकसित होते गए हैं। सुषमा जहां कुंठा और शोषण का शिकार होती है वहीं राधिका बिखरती और यहीं से शुरू होती है अनु की शेषयात्रा , जिसे वाना पूरी करती है और वह न तो सुषमा की तरह सामाजिक शोषण का शिकार होती है न ही राधिका की तरह भटकती है और न अनु की तरह पति प्रेम पाने के लिए उसके सामने गिड़गिड़ाती ही है। वह तो एक ही झटके में तमाम बंधनों को तोड़ कर अपने स्वत्व को प्राप्त कर लेती है। यमन तक आते आते उनकी नारी संत कबीर की पंक्तियों पर अग्रसर खुद को कथन मुक्त करके नया जीवन जीने के लिए प्रस्तुत हो जाती है तो नदी उपन्यास तक आते आते गंगा नामक पात्र अपना सुंदरबन खोज कर अपने जीवन का लक्ष्य पा लेती है।

इस तरह जागरण के इस युग में नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग हुई है उषा जी के उपन्यासों की नारियाँ मूल्य बोध के परिवर्तन के फलस्वरूप कहीं वह बदली, कहीं उसी बिंदु पर जकड़ी रही और कहीं उसने नव बिंदुओं का निर्माण किया। अतः उषा जी के उपन्यासों में चित्रित स्त्रियों के बहु आयामी स्वरूप उजागर हुए हैं।

संदर्भ

1. उषा प्रियंवदा, सम्पूर्ण कहानियाँ पृष्ठ 17-18
2. घनश्याम मधुप, हिंदी लघु उपन्यास, पृष्ठ 177
3. हिंदी की नारीवादी कथा धारा, भारतीय साहित्य परिषद, 2014
4. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृष्ठ 54
5. सत्यप्रकाश मिलिंद(संपा.), हिंदी की महिला साहित्यकार, 1960, पृष्ठ 29
6. उषा प्रियंवदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, पृष्ठ 23
7. उषा प्रियंवदा, शेषयात्रा, पृष्ठ 78
8. उषा प्रियंवदा, शेषयात्रा,पृष्ठ 117
9. निर्मला जैन: कथा समय में तीन हमसफर, पृष्ठ 148
10. डॉ. सौ. मंगल कप्पीकेरे, साठोत्तर हिन्दी लेखिकाओं की कहनियों में नारी, पृष्ठ 158
11. उषा प्रियंवदा, मछलियाँ , पृष्ठ 380